धर्मव्याध-कथा

लेखक

राजेश्वर झा

बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना

प्रकाशक

श्री अमरनाथ झा

ग्राम–रसुआर, पो०–निर्मली,

जिला–सहरसा

धर्मव्याध-कथा

लेखक

राजेश्वर झा

बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना

प्रकाशक

श्री अमरनाथ झा

ग्राम–रसुआर, पो०–निर्मली,

जिला–सहरसा

मूल्य १) टाका मात्र

मुद्रक
श्री कामेश्वर प्रसाद
कालिका प्रेस,
आर्यकुमार रोड, पटना-४

प्राक्कथन

भारतवर्ष मे वर्णव्यवस्थाक निर्माण मुख्यतः अर्थशास्त्रक कार्यविभाजन सिद्धान्त पर भेल जे जाति एवं वर्ण सँ सर्वदा भिन्न छल। ऋग्वेद मे अलंकारिक भाषा मे समाज के एक जीवित पुरुष कहल गेल अछि। ऋग्वेद भाषा सँ इहो ध्वनित होइछ जे जाहि प्रकारेँ शरीरक सब अङ्ग परस्पर संलग्न रहैछ तथा जँ शरीरक एक अङ्ग मे पीड़ा होइछ तँ ओकर अनुभव शरीरक समस्त अङ्ग मे स्वतः भए जाइछ एवं शरीर मध्य एक तरहक कान्ति प्रसारित भए जाइछ ताहि रूपें समाजो मध्य पारस्परिक संगठनक तथा जीवन शक्तिक स्थान अछि। एवंक्रमे संगठन वा जागृतिक भाव के व्यंजितक निमित्त ऋग्वेदक पुरुष-सूक्त मे समाज के पुरुषक रूप देल गेल। एहि पुरुषक विभिन्न अङ्गक वर्ण एहि तरहे अछि—"पुरुषक मुँह ब्राह्मण, भुजा क्षत्रिय, जाँघ वैश्य तथा पयर शूद्र थिक।"

समाज रूपी पुरुषक मुँह सँ केवल भोजन केनहार मुँहक तात्पर्य नहि भए ओहि मे विशेष रूप सँ मस्तिष्कक समावेश होइछ। मनुष्यक शरीर मे मस्तिष्के सर्वोच्च एवं सर्वप्रथम अङ्ग थिक। मनुष्यक मस्तिष्क समस्त क्रियाक संचालन कए उदात्त भावना के उत्पन्न कए ओकरा जेना सन्मार्ग मे प्रेरित करैछ तहिना समाजक मस्तिष्को अपन अनुभव एवं ज्ञानक द्वारा विशिष्ट योजना उपस्थित करैछ जकरा अपनौला सँ समाज सन्मार्ग मे प्रवृत्त भए अपन उद्दिष्ट तक पहुँचैत अछि। ऋग्वेद मे एहि व्यक्ति कें ब्राह्मण नाम सँ सम्बोधित कएल गेल अछि। ब्राह्मणक जीवन ब्रह्मप्राप्ति वा सत्यक अन्वेषणे मे व्यतीत होइछ। ब्राह्मण आजीवन समाजसेवा, ज्ञानोपार्जन, ज्ञानवितरण आदि पवित्र कार्य मे संलग्न रहैछ तथा ओकर सांसारिक वभवक यत्किञ्चितो चिन्ता नहि राखि साधारणतः वेदाभ्यास, तपश्चर्या, योगसाधन आदि मे अपन समय व्यतीत करैत अछि।

ऋग्वेदक अनुसार क्षत्रिय समाजरूपी पुरुषक भुजा थिक। प्रजारक्षण, दान, यज्ञ करब, स्वाध्याय, इन्द्रिय दमन आदि क्षत्रियक कर्त्तव्य बुझल जाइछ। वैश्यक सम्बन्ध जाँघ सँ कहल गेल अछि। समाजक भरण पोषण निमित्त पशुपालन, कृषि, वाणिज्य आदि वैश्यक कर्त्तव्य मध्य समावेश कएल गेल अछि।

ऋग्वेद मे शूद्र समाजरूपी पुरुषक पयरक रूप मे कहल गेल अछि। जेना शरीर मे सेवाकार्यक हेतु पयर अछि तहिना समाज मे सेवाकार्यक निमित्त शूद्र थिक। समाजक सेवाक सम्पूर्ण उत्तरदायित्व शूद्र पर तँ रहल किन्तु एहि हेतु ओ नीच नहि बुझल गेल। प्राचीन समाज मे ऊँच-नीचक भाव नहि रहि समाजक विकासक हेतु चारू वर्ण अनिवार्य मानल गेल। शूद्र कें समाज मे समुचित स्थान प्राप्त छल तथा ओ समाजक एक अविकल अङ्ग मानल गेल। आन-आन वर्ण सन शूद्रहु कें आत्म-

विकासक पूर्ण अवसर छलैक तथा योग्यतानुसार ओकरा समाज मध्य प्रतिष्ठा प्राप्त भेल। यजुर्वेद मे शूद्रक वेदाध्ययनक अधिकारक उल्लेख पाओल जाइछ। ऐतरेय ब्राह्मण तथा कौषीतकी ब्राह्मण मे कवषऐलुषक वर्णन पाओल जाइछ जे दासीपुत्र छथाह। हुनक विद्वताक कारणे गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, वशिष्ठ आदि महान ऋषियो हुनका आदर सत्कार करैत छलथिन्ह।

ओ ऋषि लोकनि कवषऐलूष के नमस्कार तथा आध्यात्मिक विकास मे हुनक श्रेष्ठत्व के स्वीकार कएल। कवषऐलूष ऋग्वेदक कतिपय मंत्रक द्रष्टा सेहो थिकाह।

कक्षीवत्क उल्लेख ऋग्वेद मे बारम्बार आएल अछि। ओहो दासीपुत्रे छलाह। ऋग्वेद मे हुनका दीर्घतमस्क पुत्र कक्षीवान अथवा ओशिकक पुत्र कक्षीवान ऋषि कहल गेल अछि। कक्षीवानक पुत्री घोषा काक्षीवतीयो मंत्रद्रष्टी छलीह। घोषाक पुत्र सुहस्त्यो घौषेय सेहो ऋग्वेदक तीन मंत्रक द्रष्टा थिकाह।

उपरोक्त उल्लेख सँ प्रतीत होइछ जे शूद्र वा दासीपुत्रहुँ के आत्मविकासक पूर्ण अवसर देल जाइत छल तथा समाज मध्य शूद्रो के समुचित स्थान प्राप्त छलैक। शतपथ ब्राह्मण मे वर्णित अछि जे ब्राह्मण "ओउम्" सँ, क्षत्रिय "भूः" सँ, वैश्य "भुवः" सँ तथा शूद्र "स्वः" सँ उत्पन्न भेल। एवंक्रमे शूद्रो के समाजक आवश्यक अङ्ग मानि पवित्र गायत्री मंत्रक व्याहृति सँ उत्पन्न कहल गेल अछि। वैदिक वाङ्मय मे राज्याभिषेकक प्रकरण मे जाहि नौ रत्नीक वर्णन अछि ओहि मे शूद्रो के सम्मिलित कएल गेल अछि। अतएव ई निश्चित बुझना जाइछ जे समाज मे शूद्र के केवल दास्य-कर्म टाके सम्पादन नहि कए ओकरा आत्मविकासहुक पूर्ण अधिकार प्राप्त छलैक जाहि सँ ओ समाज मध्य उँच स्थान प्राप्त कए गौरवान्वित होइत छल।

एहि मन्तव्यक पुष्टि मे यजुर्वेदक मंत्र—'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्या ꣳ, शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।'

—यजुर्वेद २६।२

मे वेदक कल्याणकारी वाणी मनुष्यमात्रक निमित्त कहल गेल अछि। ओ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वा अरण चाहे जाहि जातिक होथु। यजुर्वेदक एहिमंत्र—'ब्राह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं।'

—यजुर्वेद ३०।५

मे ब्राह्मण के ब्रह्म सँ, क्षत्रिय के क्षात्र सँ, वैश्य के मरुत सँ तथा शूद्र के तप सँ सम्बन्धित कएल गेल अछि। एहि तपक प्रभाव सँ ओहि मे सँ कतिपय व्यक्ति आत्मविकासक चरम सीमो पर पहुँच गेलाह।

धर्मसूत्र, स्मृति आदि सँ ज्ञात होइछ जे शूद्रक निमित्त शिल्पवृत्ति वा दास्यकर्म निहित छल। आर्यक समाज मे प्रवेश पाबि जेना-जेना ओ प्रगति करैत गेल तेना-तेना ओकर समाज मध्य जीविका निर्वाहक आन-आन साधन स्रोतो प्राप्त होइत गेलैक जे अद्यावधि दृष्टिगोचर होइत अछि। अतएव वर्णाश्रम सँ तात्पर्य ऊँच-नीच सँ नहि

भए मनुष्यक वैयक्तिक जीवन सँ अछि जे आत्मविकासोन्मुखक निमित्त थिक। आत्म-साक्षात्कार मानवक समस्त प्रयत्नक केन्द्रीय स्थान एवं जीवनक महान उद्देश्यक पूर्ति करैछ जाहि पर मनुष्यक पुनर्जन्मक सिद्धान्त आधारित अछि। आत्माक परम ध्येय जीवन-मरणक बन्धन सँ मुक्त होएब एवं अपना केँ चिन्हब थिक जे यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि सँ उपलब्ध होइछ। यद्यपि अत्यन्त प्रारम्भहि सँ भौतिकता वा आध्यात्मिकता मे सामञ्जस्य स्थापित कएल गेल तथा दुहु क्षेत्र मे पर्याप्त विकास भेल तथापि अज्ञात केँ बुझबाक प्रयत्न करब तथा प्रकृति, जीव, ब्रह्म, आत्मा, जगत आदिक समस्या केँ सुलझाएब मानव जीवनक महान उद्देश्य मानल जाइछ। एहि उद्देश्यक पूर्तिक निमित्त आश्रम व्यवस्थे उपयुक्त प्रतीत होइछ। लौकिक दृष्टि सँ गृहस्थाश्रम अधिक महत्वपूर्ण मानल जाइछ। जाहि पर अन्य तीनू आश्रमक अस्तित्व निर्भर रहैछ। गृहस्थ केँ पञ्च महायज्ञ आदि द्वारा अपन जीवन केँ धार्मिक बनाएब एवं तीनू ऋण सँ उन्मुक्त होयब सुलभ अछि जाहि सँ गृहस्थ केँ धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षक उपलब्धि होइछ।

आश्रम व्यवस्थाक अनुसार गृहस्थ केँ आर्थिक विकास सँ सम्बन्धित दुइ प्रकारक आध्यात्मिक एवं आर्थिक उन्नतिक उत्तरदायित्व अछि जे मानव जीवनक वास्तविक उद्देश्य केँ ध्यान मे राखि आर्थिक उन्नतिक मार्ग मे अग्रसर होइछ।

भारतीय संस्कृतिक अत्यन्त आरम्भे सँ समाजक प्रत्येक नागरिक के अपन जीवन मे पितृऋण, ऋषिऋण तथा देवऋण सँ उत्तीर्ण होयब परम आवश्यक थिक। पितृऋण मनुष्यक पारस्परिक जीवन सँ तथा ऋषिऋण एवं देवऋण सामाजिक एवं धार्मिक जीवन सँ सम्बन्धित अछि। मनुष्य वेदाध्ययन सँ ऋषिऋण, यज्ञ द्वारा देवऋण तथा संतानोत्पत्ति द्वारा पितृऋण सँ मुक्त होइत अछि। धार्मिक तथा पारलौकिक दृष्टि सँ मृत पितर केँ श्राद्ध आदिक क्रिया सम्पादनक निमित्त पुत्र अत्यन्त आवश्यक बुझल जाइछ तथा माता-पिता विद्वान, धार्मिक, स्वावलम्बी, वीर एवं युद्धकलारत पुत्रक कामना करैत अछि।

ऋषिऋण स्वाध्याय द्वारा पूर्ण कएल जाइछ। वेदाध्ययन एवं ज्ञानोपार्जन कार्य मे निमग्न रहला सन्ता समाज मध्य ज्ञानक ज्योति सतत् उद्भासित होइत रहैछ जाहि सँ सम्पूर्ण समाज पूर्णरूप सँ विकसित भए उन्नत अवस्था केँ प्राप्त होइछ।

मनुष्य केँ यज्ञादि द्वारा देवऋण सँ मुक्ति भेटैछ। यज्ञक विकास त्यागक भावना सँ होइछ। देव शब्द 'दिव' धातु सँ बनैछ जकर अर्थ होइछ "चमकब"। देव शब्दक अर्थ होइछ प्रकाशयुक्त वा देदीप्यमान। अतः देव शब्द सँ आत्मिक प्रकाशक बोध होइछ। जनिक आत्मा अधिक परिष्कृत अछि हुनकहि मुँह पर एक दिव्य तेज परिलक्षित होइछ। अतएव देव शब्द सँ ओहि महान पुरुषक तात्पर्य्य अछि जनिका आत्म-साक्षात्कार भए गेल छैन्ह। ओ महान आत्मा उन्मार्गगामी मानव समाज केँ मात्र सन्मार्ग पर पुनि आनबाक निमित्त भूमण्डल पर अवतरित होइछ। अतएव देवऋणक एहि तरहक भाव सामाजिक उन्नयनक निमित्त अनिवार्य होइछ।

पितृऋण, ऋषिऋण एवं देवऋणक सिद्धान्तक द्वारा समाज मध्य अनुशासन द्वारा वास्तविक नागरिकताक भाव कें जागृत करैछ। एहि तीनू ऋण मे जीवनक विभिन्न अङ्ग सँ सम्बन्धित कर्त्तव्यक समावेश पाओल जाइछ जाहि सँ उन्मुक्त भए मनुष्यक सम्पूर्ण जीवनक विकास होइछ।

एवंक्रमें मनुष्य वर्णाश्रम मे रहि कर्म द्वारा जाति एवं वर्ण कें उपेक्षा कए भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति मे अग्रसर भए समाज सँ ऊपर उठि महान धर्मात्मा एवं तत्ववेत्ताक रूप मे प्रख्यात होइत अछि। मिथिलाक धर्मव्याध सेहो एहि गुण कें पाबि समाज मध्य नितान्त प्रख्यात भए गेल छलाह।

मिथिलाक संस्कृति मध्य एहि तरहक दिग्दर्शन अनेक स्थल पर उपलब्ध होइछ। विदेह राज जनक क्षत्रिय होइतहुँ मधुविद्याक ज्ञाता छलाह। वाल्मीकि-रामायणक उत्तरकाण्डक सत्रहम सर्ग मे ब्रह्मवादिनी वेदवतीक उपाख्यान वर्णित अछि। वेदवती साक्षात वाङ्मयी छलीह तथा वाणीक साकार प्रतिमा हुनक समस्त गुण कें विभूषित करैत छल। पिता ब्रह्मर्षि कुशध्वजक मृत्युक उपरान्त वेदवती मिथिला राज्य मे हिमालयक निकटस्थ एक आश्रम मे ब्रह्मचारिणीक अनुशासनपूर्ण एवं तपोमय जीवन बीतबैत छलीह। कृष्ण मृग-चर्म एवं जटा सँ युक्त ओ ऋषि सदृश सत्कार्य मे लागल रहैत छलीह। एहि विवरण सँ ज्ञात होइछ जे राजकुमारी वेदवती कें अपन पारिवारिक परम्पराक अनुरूप एक आश्रम मे वेद एवं कर्मकाण्डक उच्चशिक्षा भेटल छल। तत्पश्चात हुनका ऋषि तुल्य पद प्राप्त भेलैन्ह।

रामायण मे अहल्याक प्रसंग मे 'न्यासभूतान्यस्ता' अर्थात् एक धरोहरिक रूप मे वर्णित अछि। कतिपय वर्षक उपरान्त अनुशासित एवं प्रशिक्षित भेलाक पश्चात हुनका हुनक अभिभावक कें 'निर्यातिता' अर्थात वापस कए देल गेल। तदुपरान्त गौतमक चरित-बल तथा हुनक तपःसिद्धि सँ प्रसन्न भए ब्रह्मा अहल्या कें हुनका पत्नीरूप मे स्वर्गनार्थ समर्पित कएल। एहि सँ प्रतीत होइछ जे मिथिला मे कन्याक शिक्षाक समुचित व्यवस्था छल तथा ओ अपन भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक गुण सँ समाज मध्य प्रतिष्ठा प्राप्त करैत छलीह।

एवंक्रमें मिथिला में अपन विद्या एवं बुद्धिक प्रभावें निम्न सँ निम्न योनि मे उत्पन्न व्यक्ति एवं स्त्रियो समाज मध्य समुचित स्थान प्राप्त कए प्रतिष्ठा कें प्राप्त करैत छल।

मिथिलाक धर्मव्याध मिथिलाक परम्पराक अनुरूप गृहस्थ होइतहुँ त्यागी, शूद्र होइतहुँ धर्मज्ञ एवं तत्ववेत्ता तथा नितान्त निन्दनीय वृत्ति कें करितहुँ समाज मध्य मान्य छलाह।

एहि कथाक मूल तँ महाभारतक वन पर्व मे वर्णित अछि किन्तु एहि मे हम स्वाभाविकता ओ रोचकता दुहू कें दृष्टि मे राखि अपन स्वेच्छा सँ कतहु कम तथा कतहु बेसी कए अपना शब्द मे लिखल अछि। अतः एहि कथा कें अनुवाद कहब

अनुचित होएत किएक तँ अनुवाद तँ ओ कहल जाइछ जे सम्पूर्ण मूलक भाषान्तर मे प्रतिपादित होइछ।

एहि कथा केँ मैथिली मे लिपिबद्ध करबाक एकमात्र उद्देश्य छल जे मातृभाषा मे अपन मातृभूमि सँ सम्बन्धित बिलक्षण कथा केँ प्रस्तुत कए एक अभावक पूर्ति करी। तदर्थ अल्प ज्ञानक त्रुटि, भाषाक दोष, भाव ओ आन-आन तरहक दोष केँ रहितहुँ कथाक अन्वित वर्णनक उत्कट लोभ अनुप्रेरित कएल। आशा करैत छी जे विद्वान लोकनि हमर अल्प विषयाभिमति सँ भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तत्वक बुझबाक प्रयास केँ नितान्त मोहात बुझि एकर त्रुटि दिसि ध्यान नहि दए केवल धर्मक भावने सँ कथामृतक रसास्वादन करताह।

२६-२-१९६८ ई०

—राजेश्वर झा

धर्मव्याध-कथा

भारतीय संस्कृति मध्य आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं आधिदैविक जीवन वर्णाश्रम-व्यवस्था मे सन्निहित नहि भए व्यक्तिक ज्ञान, कर्म एवं उपासनाक प्रतिपादन मे प्रादुर्भूत होइछ जे अर्थ तथा कामक साधन कें रहितहुँ लौकिक एवं पारलौकिक उन्नतिक निमित्त थिक। एहि उदात्त भावनाक एक गोट कथा—मिथिलाक 'धर्म-व्याध-कथा' नामे महाभारत मे परिलक्षित अछि जकर कथानक एवंकमें पाओल आइछ —

अपन बुद्धि एवं पराक्रम सँ गिरि, कानन, सिन्धु, पवन एवं अम्बर पर विजय प्राप्त करैत तप, त्याग तथा सहिष्णुता सँ दैविक, दैहिक एवं भौतिक परिताप कें सहन करैत पाँचो पाण्डव प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापति एवं अनुपलब्धि, द्रौपदीक एहि छः प्रमाण सँ युक्त, श्रेष्ठ लावण्य, अलौकिक नम्रता तथा अद्भुत प्रतिष्ठा सँ परस्पर अनुरंजित होइत पत्र-फल सँ पूर्ण काम्यक वन मे प्रविष्ट भेलाह।

वन-प्रान्तक ओहि भू-भाग मे आनन्द-सुमनक मधुवर्षा, हर्ष-विहगक मधुर संगीत, तथा निवृत्ति एवं विश्वास सरिताक अविरल प्रवाह कें निरखि पाण्डव हर्षोत्फुल्ल भए विश्राम करए लगलाह।

काम्यक वन मे पाण्डवक आगमनक चर्चा विद्युतक आभा सन समस्त वन-प्रान्त मध्य प्रसारित भए गेल। परमार्थदर्शी, वीतराग एवं निरहङ्कार मुनि लोकनि ओतए आबि पाण्डव लोकनि कें सतत् अपन आशिर्वचन सँ कृतार्थ करैत छलाह तथा स्वाध्याय, सत्संगक वातावरण सँ हुनका लोकनिक रूचिक नित्य परिस्कार, परिमार्जन एवं संस्कार होइत रहैत छल। वस्तुतः काम्यक वनक अमावस्याक अन्धकारसन भूभाग पूर्णिमाक स्वच्छ ज्योत्सनाक रूप मे परिणत भए गेल।

पाण्डवक आगमनक सूचना कें पाबि भगवान कृष्णक आनन पर अनादि प्रेमक अनन्त सुख एवं अद्भुत ज्योतिक आभा प्रस्फुटित भए गेल। ओ स्नेह सँ आतुर भए सत्यभामाक संग सत्वर हुनका लोकनिक जिज्ञासार्थ काम्यक वन कें प्रस्थान कएल। कृष्ण कें देखितहिँ पाण्डवक सभ व्यथा क्षणमात्रक निमित्त अन्तर्धान भए गेल तथा ओ लोकनि सभ संताप कें बिसरि प्रस्फुटित कमल सन

प्रमुदित प्रतीत भेलाह। कुशलोपरान्त जावत पारस्परिक वार्त्तालाप होइतहि छल तावतहि अपन विमल कान्ति सँ समस्त दिशा कें उद्‌भासित एवं तपस्तेज सँ सभहक नेत्र कें विस्मित करैत रूप एवं गुण मे श्रेष्ठ महान् तेजस्वी मार्कण्डेय मुनिक पदार्पण भेल। पाद्य, अर्घ्य, आसन, फल आदि सँ विविध प्रकारे मुनिक सत्कारक उपरान्त धर्मराज युधिष्ठिर नितान्त विनम्र भए मुनिक अनुनय करैत निवेदन कएल— "हे तात! समय पाबि मनुष्यक हृदयाग्नि तँ शान्त भए जाइछ किन्तु सागरक बड़वानल तँ सतत् तहिना बनल रहैछ। तृण स्पर्श भेला सँ फणीश फुफकारैछ किन्तु अतुल विक्रमक दीप्तिक कोनो परिणाम नहि भए ओ बुद्धिक प्रमाद एवं भ्रान्ति मे परिवर्त्तित भए रहल अछि।"

धर्मराजक एवंक्रमक वचन कें सुनि मार्कण्डेय मुनि अत्यन्त मृदुस्वर मे बजलाह—"हे धर्मराज! उत्तम पुरुष सिंह एवं चातक सन अपन मानक रक्षा प्राणहुँ सँ अधिक बुझैत अछि तथा चन्द्रमा सन स्वतः अपनहि प्रभा सँ शोभायमान होइत अछि। जीवमात्र ओतहि जाइछ जतए ओकरा आनन्दक उद्रेक होइछ किन्तु ओकर उद्रेकक भावना सर्वथा भिन्न होइछ। खद्योत कें चमकि-चमकि बुझैवा मे आनन्दक उपलब्धि होइछ तथा शलभ कें परोपकार निमित्त अपना कें अन्त करबहि मे आनन्दोत्पन्न होइछ। तेँ की दुहुक समान मर्यादा छैक!"

मार्कण्डेय मुनिक एवंक्रमक उक्ति कें सुनि धर्मराज युधिष्ठिर विश्रान्ति करैत पुनि बजलाह—" हे भगवन! मनुष्यमात्र कें कर्मानुसार फल प्राप्ति होइछ तथा बुद्धि सेहो कर्मानुसारे होइछ। तदर्थ मनुष्यक जन्म-मरण, सुख-दुख, संकल्प-विकल्प आदि सँ सम्बद्ध पुरावृत्त पुण्यकथा श्रवणक उत्कण्ठा अछि। हे प्रभु! हमरा लोकनिक एहि अतृप्त कामना कें अपन तपस्याक फल सँ पूर्ण करबाक कष्ट करी।"

धर्मराजक एहि अनुनय सँ प्रसन्न होइत मार्कण्डेय मुनि अनेक कथा कें कहल जाहि मे प्रसंगवशात् इहो कथा कहल गेल छल—

कौशिक एवं पतिव्रताक उपाख्यान

ब्रह्मतेज एवं तपस्तेज सँ देदीप्यमान तथा लोकोत्तर ज्ञानक आलोक सँ उद्दीप्त महात्मा कौशिक एक दिन एक वृक्षक समीप तपश्चरण मे निरत छलाह। एहि

अनन्तर एक अविनीत बगुला जे वृक्षक एक शाखा पर बैसल छल हुनका ऊपर बटक कए देल। बगुलाक दुष्कृत कौशिकक क्रोधानिल केँ भड़का देल। हुनकर नेत्र सँ अग्निक ज्वाला प्रस्फुटित होमय लागल। फलस्वरूप बगुला अपन कृतक फल केँ प्राप्त कए धरातल पर खसि पड़ल तथा ओकर प्राण सत्वर विमुक्त भए गेल।

बगुलाक एवंक्रमक दशा केँ देखि कोमलताक प्रतिमूर्त्ति कौशिक दया सँ द्रवीभूत भए पश्चाताप करैत भिक्षाटन निमित्त एक ग्राम मे गेलाह। ग्रामक एक गृहस्थक गृह जाए भिक्षाक याचना कएल। नेत्रक चपल कोर, विलासक भार सँ मन्थर गति एवं मनोरम मुखमण्डल सँ युक्त गृहस्थ-पत्नी मूर्त्तिमती स्मृति सन श्रुतिक अर्थरूपी पथक अनुसरण करैत सरसवाणी मे बजलीह—"हे तापस! भिक्षाक पात्र केँ माँजि शीघ्रे भिक्षा दए रहल छी। अतः कनेक विलमि तँ जाऊ!"

गृहस्थ-पत्नीक आश्वासन केँ पाबि कौशिक विलमि गेलाह तथा उदयोन्मुख चन्द्रक आनन सँ शोभित मधुयामिनीक संग शुभ्र दुकूल वसन परिहिता परमित भूषण सँ नारीक सौन्दर्यक रहस्यमयी चिन्तना मे निमग्न भए विरक्ति, निवृत्ति एवं आसक्तिक विश्लेषण मे परिव्याप्त भए गेलाह। एहि अनन्तर गृहपतिक गृह मे पदार्पण भेल जे कतहु अन्यत्र गेल छलाह। गृहस्थ-पत्नी अपन पति केँ देखि पाद्य, अर्घ्य, भोजन आदि सँ हुनक तुष्टि मे निरत भए भिक्षाक सुधि बिसरि गेलीह। दिनान्तक उपरान्त सूर्यक तेज निहित भेला सँ जेना हुताशन अधिक प्रदीप्त होइछ तहिना जेना-जेना विलम्ब होइत जाइत छल कौशिकक क्रोधानिल भभकैत छल। अन्ततोगत्वा ओ नितान्त उग्र भए बजलाह—"हे साध्वी! की अहाँ धर्मक मर्म केँ नहि जनैत छी जे जकरा गृह सँ असत्कारित अतिथि विमुख भए प्रत्यागमन करैछ ओकर गृह सँ देवता एवं पितर सभ पराङ्मुख भए जाइछ? जँ अहाँ केँ भीख नहिए देबाक छल तँ आश्वासन किएक देलौंह? की अहाँ केँ हमर तपश्चरणक प्रभाव बुझल अछि?"

कौशिकक एवंक्रमक त्रासयुक्त वचन केँ सुनि गृहस्थ पत्नी बिहुँसैत बजलीह—"हे तापस! इन्द्रिय सुख तथा मोक्ष दुहु भिन्न-भिन्न मार्ग थिक। विषय-भोग केँ परित्याग सँ जँ विषय वासना एवं भोग भाव नहि छूटैछ तँ विविध प्रकारक भेष तथा चेन्ह केँ धारण सँ कोन लाभ भए सकैछ? केवल ज्ञाने सँ मोक्षक उपलब्धि नहि होइछ। एहि हेतु कर्महु अनिवार्य होइछ। पति-अर्चना मे निमग्न

रहला सन्ता अहाँ कें भिक्षा मे विलम्ब भेल। अतएव अहाँ सँ क्षमा याचना करैत छी।"

गृहस्थ-पत्नीक एहि कथा कें सुनि कौशिकक क्रोधानिल अधिक उग्र भए गेल तथा ओ सत्वर बजलाह —"हे स्त्री! अहाँ गृहस्थ धर्म मे रहि ब्राह्मणक अनादर करैत छी। एहि जगतक वैभव इन्द्रधनुषक सदृश क्षणमात्रे मे नष्ट भए जाइछ, लावण्य एवं वर्ण अस्थायी होइछ तथा यौवन करतलस्थित जल सन विगलित भए जाइछ। मनुष्यमात्रक कोन कथा देवराजहु कें तापसक भय होइछ। की अहाँ नहि जनैत छी जे ब्राह्मण अग्निवत् होइत छथि जनिकर कोप सम्पूर्ण ब्रह्माण्डो कें भस्मीभूत कए सकैछ?"

कौशिकक वचन कें सुनि गृहस्थ-पत्नी अत्यन्त विनम्र भए कहए लगलीह—"हे तपस्वी! की अहाँ हमरा बगुला बुझैत छी? अहाँक क्रोध हमर कोनहुटा अपकार नहि कए सकैछ। देवतुल्य ब्राह्मणक हम अनादर नहि करैत छी। हम हुनक तेज एवं महत्व सँ पूर्ण अवगत छी। हुनकर अन्तस्थल मे अत्यन्त क्रोधक संग अपार क्षमा-गुण सेहो सन्निहित रहैछ। हे द्विज! जीवन कर्म प्रधान तथा कला कर्मक पराकाष्ठा थिक। कर्म, विकर्म एवं अपकर्म एकहि आरोहणक सोपान थिक। फलक आशा सँ जँ कर्म कएल जाइछ तँ ओ बन्धन भए जाइछ किन्तु जँ मनुष्यक अन्तस्थल मे कर्म व्याप्त भए जाइछ तँ फलक कामना नहि करैछ। एहि स्थिति मे कर्म मनुष्यक धर्म बनि जाइछ। नारीमात्रक जीवनक आनन्दकोष मधुपूर्ण हृदय थिक। गार्हस्थ्य जीवन तँ तखनहि साफल्य होइछ जखन नर-नारी दुहु अभिन्न भए एकहि वृन्त पर विकसित दुइ फूल सन सतत् प्रमुदित रहैछ। हे ब्राह्मण! हम पतिव्रता छी। पतिव्रता नारी पतिक चरण कें निहारैत पति सेवे कें सर्वोपरि धर्म बुझैत अछि। पतिव्रता स्त्री अपन पतिए कें सभ सँ पैघ देवता बुझैत अछि। तदर्थ हमहुँ एहि रूपे आचरण करैत छी। हे भगवन! पतिक सेवाक प्रसादात् गृहमध्य रहितहुँ हम बगुलाक दशा सँ अवगत भए गेलहुँ। हे ब्राह्मण! क्रोध महापाप थिक। जितेन्द्रिय, धर्मनिष्ठ, स्वाध्याय निरत, पवित्र हृदय भए जे काम एवं क्रोध कें जीतैछ ओकरहि ब्राह्मण कहल जाइछ। स्वाध्याय, क्रोधत्याग, एवं इन्द्रियदमनहि तँ ब्राह्मणक सम्पत्ति थिक। धर्मविद् सत्य एवं सरलतहि कें परम धर्म कहैछ। सनातन धर्म कें जानब तँ नितान्त मोहात थिक किन्तु ई तँ सर्वमान्य थिक जे ओ धर्म सत्यहि मे सन्निहित अछि। वस्तुतः अहाँ धर्मात्मा, स्वाध्याय निरत एवं राग-द्वेष रहित तँ भए गेल छी, किन्तु धर्मक

वास्तविक तत्वक ज्ञान सँ अखनहुँ अहाँ पराङ्मुख छी। हे विप्र ! जँ अहाँ जिज्ञासु छी तँ मिथिलापुरी मे जाए धर्मव्याध सँ धर्मक तत्वक जिज्ञासा करी।"

गृहस्थ-पत्नीक एहि उत्तर केँ सुनि निन्दा-प्रशंसा सँ अविचलित, सूर्यक प्रखर प्रकाश मे दीप सन मलीन एवं निस्तेज भए कौशिक अत्यन्त मृदुस्वर मे बजलाह—"हे भामिनी ! विमल कुल, सुन्दर शरीर, विशुद्ध बुद्धि, विपुल बल, अपार समृद्धि एवं अखण्ड प्रभुता केँ पाबि मनुष्य मात्रक बुद्धि भ्रान्त भए जाइछ किन्तु ई तँ अहाँक हेतु संयम भए गेल अछि। संगति सँ साधारणतः भय उत्पन्न होइछ और गृहस्थी सँ राग किन्तु अहाँ सांसारिक अवस्था मे रहितहुँ ओहि सँ विमुख एवं तृष्णा तथा लोलुप्यता सँ रहित भए पुण्य एवं पापक संचय नहि करैत छी। वस्तुतः जाबत मनुष्य केँ ब्रह्मक ज्ञान नहि होइछ ताबत आत्मज्ञान नहि भए सकैछ। तदर्थ हे शुभरूपिणी ! अहाँक कल्याण हो। हमर आब सभ क्रोध शान्त भए गेल तथा हम अहाँ पर बड़ प्रसन्न भेलहुँ। अहाँक कठोर सत्य केँ सुनि हमर मोहक अवगुण्ठन सर्वदाक निमित्त हटि गेल। अतः आब हम एहि स्थान सँ प्रस्थान करैत छी।"

गृहस्थ-पत्नी सँ एवंक्रमेँ कहि महात्मा कौशिक ओतए सँ प्रस्थान तँ कएलैन्ह किन्तु हुनक मन-मानस सतत् विचारक तरंग सँ उद्वेलित होइत छल। कौखन तँ ओ ओहि पतिव्रताक प्रशंसा करैत छलाह तथा कौखन स्वयं अपनहि केँ अपराधी बुझि आत्मग्लानि सँ अपना केँ धिक्कारैत छलाह। एवंक्रमेँ आनन्द एवं अभिशापक ग्लानि मध्य उल्लसित एवं व्यथित होइत धर्मक तत्वक अन्वेषण मे ओ मिथिलाक यात्रा कएलैन्ह।

कौशिक तथा धर्मव्याधक वार्त्ता

अनेक नगर, ग्राम एवं सघन वनक यात्राक उपरान्त कौशिक राजा जनकक दिव्य नगरी मिथिला मे प्रविष्ट भेलाह। भरत क्षेत्र मे प्रसिद्ध 'मिथिला' अत्यधिक मनोहर भेला सँ प्रतीत होइत छल जे ब्रह्मा इन्द्रक अलका सँ स्पर्द्धा कए जेना अपर स्वर्गक निर्माण कएने होथि। मिथिलाक भूभाग अत्यधिक धान्य सम्पत्ति सँ पूर्ण एवं चिन्तित वस्तु देबाक निमित्त चिन्तामणि सदृश आरम्भशाली भव्य सतखण्डा भवनक शुभ्र शिखर हिमालयक शिखर केँ तिरस्कृत एवं राजभवनक उच्च शिखर पर स्थापित स्वर्ण कलश देवरमणीक भालपर आरोपित पीयर ठोप सन शोभनीय प्रतीत होइत छल।

मिथिलाक नागरिकक लक्ष्मी पात्रदानक निमित्त, चित्तवृत्ति धार्मिक कर्त्तव्य-पालनक निमित्त, गृह अतिथि-सत्कारक निमित्त तथा विद्याभ्यास आदि गुणक उपार्जन विनयशीलताक निमित्त पाओल जाइत छल।

राजा जनक वेद ज्ञाता विद्वान सँ सम्मानित एवं नारायण सदृश पराक्रमी छलाह जनिकर कीर्त्ति देवलोकहु तक पसरि गेल छल तथा ओ इन्द्र सन प्रतापी छलाह। राजा जनकक प्रवृत्ति चारू पुरुषार्थक परिपालन मे तत्पर, आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्त्ता एवं दण्डनीति एहि चारू विद्याक पारदर्शी विद्वान मध्य श्रेष्ठ, चारू सिद्धान्तक ज्ञाता तथा कीर्त्ति चारू समुद्र मध्य विख्यात छलैन्ह।

एहि नगरी मे नित्य उत्सव एवं यज्ञ-यागक आहुति सँ नभोमण्डल मेघाच्छन्न रहैत छल। नगरीक श्री ओ शोभा कें देखि कौशिक कृतार्थ भए ब्राह्मण सँ ओहि धर्मव्याधक प्रसंग मे जिज्ञासा कएल।

ब्राह्मण लोकनि सँ धर्मव्याधक पता बुझि कौशिक ओहि स्थान मे पहुँचलाह जतए पशु-हत्या होइत छल। धर्मव्याध कें भैंसा, मृग आदिक माँस बेचैत देखि कौशिक अति विस्मित भए एक कात मे स्तब्ध भए ठाढ़ रहलाह। एक दिसि हुनक व्याध गंभीर ज्ञान सँ प्राचीर वेद सन तथा अति उन्नत भाल सँ देव सन प्रतीत होइत छलाह और दोसर दिसि हुनक निम्न कर्म देखि कौशिक कें अत्यन्त क्षोभ भेलैन्ह। जाबत ओ बजबाक उपक्रम करितहि छलाह ताबतहि व्याध हुनकर समीप आबि नितान्त विनम्र भए बजलाह—"हे भगवन! सकुशल तँ छी? हमही ओ व्याध छी जकरा ओतए अहाँ कें ओ पतिव्रता पठौलैन्ह अछि। हे तापस! अहाँक मनोभाव सँ हम अवगत छी किन्तु ई स्थान अहाँक उपयुक्त नहि अछि। तदर्थ जँ कृपा हो तँ हमर गृह चलबाक कष्ट करी।"

धर्मव्याधक एवंक्रमक उक्ति सँ कौशिक कें बड़ आश्चर्य भेलैन्ह। शास्त्र ज्ञाता, नीति निपुण, सत्यनिष्ठ एवं त्रिकालज्ञ भेलहुँ सन्ता, अतिनिन्दनीय कर्मक सम्पादन हुनकर अन्तःकरण मे विचारक शृंखला उत्पन्न कए देल जकर प्रवाह मे ओ बहए लगलाह।

धर्मव्याधक आग्रह कें ओ सहर्ष स्वीकार कए हुनक मनोहर भवन मे अएलाह तथा व्याधक देल आसन, पाद्य, अर्घ्य आदि कें आनन्दपूर्वक ग्रहण कएलैन्ह।

एहिरूपे व्याध द्वारा सत्कारित भेलाक उपरान्त कौशिक व्याध सँ पूछल—"हे सौम्य! सत्य, ज्ञान, करुणा, क्षमा, पराक्रम, दान, नीतिपरायणता आदि

समग्र गुण अहाँ मे विराजमान अछि तथा आतपयुक्त सूर्य प्रभृति महान पुरुष निन्दनीय कर्म कथमपि नहि करैत छथि तथापि अहाँ एहि कर्म कें किएक अपनौने छिऐक ?"

कौशिकक एहि बचन कें सुनि व्याध घृणा, ग्लानि, मान, मोह सँ रहित भए अति मृदुस्वर मे बजलाह—' हे ब्राह्मण ! पैल मे राखल मदिरा सँ पैलक कोन सम्बन्ध रहैत छैक ? जकरा श्रुति-प्रामाण्य मे विश्वास रहैछ ओकरहि कर्म मे निष्ठा रहैछ जाहि सँ चित्तशुद्धि होइछ। चित्तशुद्धिक बिना परमात्माक ज्ञान होएब दुर्लभ थिक। जे पुरुष प्रकृति सँ पृथक आत्मस्वरूप मे स्थित अछि ओकरा दृष्टि मे सत् सँ पृथक कोनो वस्तु नहि होइछ। अतएव बुद्धिए जकर उपाधि थिक एहेन ओ सर्व-साक्षी ओकरा द्वारा कृत कर्म सँ थोड़बोक लिप्त नहि होइछ किएक तँ ओ असङ्ग थिक।"

तदुपरान्त हे भगवन ! ई हमर कुलोचित धर्म थिक। विधाता हमरा एहि कुल मे उत्पन्न कए जे कर्म हमरा निमित्त नियत कएल तकर विधिवत् सम्पादन करैत अपन माता-पिताक सेवा, देवता अतिथि एवं सेवक कें भोजन कराए स्वतः भोजन करैत छी तथा यथाशक्ति दान एवं सत्यक आचरण करैत छी। हे विप्र ! पूर्वकृत कर्मक अनुसार कर्त्ता कें फलक प्राप्ति होइत छैक।

हे तापस ! राजा जनकक राज्य मे किओ एहेन नहि अछि जे अपन कुलोचित कर्म कें छोड़ि दोसर वर्णक कार्य कें करैत अछि। दुराचारी एवं दण्ड योग्य अपन पुत्रहु कें राजर्षि जनक क्षमा प्रदान तथा धर्मात्मा शत्रुओ कें पीड़ित नहि करैत छथि। ओ लक्ष्मी, राज्य ओर दण्ड मे धर्मक व्यवहार रखैत छथि।

हम ने तँ पशु हत्या करैत छी आ ने स्वतः माँस भक्षणे करैत छी। हम दोसराक द्वारा आहत कएल पशुक माँस बिकी करैत छी। दुश्चरित्र भेलहु पुरुष सच्चरित्र तथा प्राणीमात्रक हिंसा मे तत्पर पुरुष धर्मात्मा भए सकैत अछि।

हम अपन प्रशंसक एवं निन्दक दुहु कें समान भाव सँ व्यवहार करैत छी। सहनशीलता, धर्म मे विश्वास, आतिथ्य-सत्कार, अपन आत्मा सन सभ प्राणी कें बुझब आदि गुण केवल त्याग गुणक आश्रित अछि। पापी लोहारक भट्ठी सन भीतर असार होइतहुँ बाहर सँ भरल प्रतीत होइछ। अहंकारी मूढ़क प्रत्येक बात निस्सार होइछ। सूर्य जेना दिन कें प्रकट करैछ तहिना ओकर अन्तरात्मा यथार्थ रूप कें प्रकट करैछ। विद्वान् ने त अपन प्रशंसा करैछ आ ने दोसराक निन्दा। एहि संसार मे सर्वगुण सम्पन्न सभहक बीच प्रतिष्ठा प्राप्त करब दुर्लभ थिक। अप-

कर्मक बोध भेला पर पश्चाताप कएला सँ ओकर प्रायश्चित भए जाइछ। जे श्रद्धापूर्वक स्पर्धारहित परोपकार मे निरत रहैछ ओ वस्तुतः धन्य मानल जाइछ। सूर्योदयक उपरान्त जेना अन्धकारक अन्तर्धान भए जाइछ तहिना धर्माचरण सँ पूर्वकृत सम्पूर्ण पाप विनष्ट भए जाइछ। हे द्विज श्रेष्ठ ! लोभ सभ पापक मूल थिक। तदर्थ विद्वान एहि सँ सर्वथा पृथक रहैत छथि। जे शास्त्रक मर्म कें पूर्णरूप सँ नहि बुझि सकल ओ घास-पात सँ झाँपल कूप सन अधर्मी अपन ज्ञान कें झाँपि पाखण्डक प्रदर्शन करैछ। बाहर सँ यद्यपि ओ जितेन्द्रिय एवं पवित्र प्रतीत होइछ तथा धार्मिक विषयक आडम्बर ओ सेहो पूर्णरूप सँ करैछ किन्तु ओकर हृदय एवं कर्म मे शिष्टाचारक अंश मात्रो धरि नहि रहैछ।"

धर्मव्याधक एहि प्रत्युत्तर कें सुनि कौशिक हर्षित भए पुनि आग्रहपूर्वक पूछल—"हे पुरुष श्रेष्ठ ! शिष्टाचार की थिक ? एहि प्रसंग मे अहाँ हमरा सविस्तार कहू।"

कौशिकक उत्सुकता कें जानि व्याध मोन एवं वाणी दुहु सँ विनम्र होइत एवंकमें बजलाह—"हे द्विजवर ! यज्ञ, दान, तप, वेद एवं सत्य ई पाँचो शिष्टाचारक पवित्र साधन थिक ? श्रेष्ठ पुरुषक सम्मति मे शिष्ट व्यक्ति काम, क्रोध, दम्भ, लोभ एवं कठोरता कें त्यागि अपन धर्मे मे संतोष करैत छथि। यज्ञ तथा स्वाध्याय केनहार शिष्ट पुरुष दोसर आचरण नहि करैत छथि। आचारक पालनो शिष्टक लक्षण थिक। गुरुवर्गक सेवा, सत्य, क्रोध-हीनता तथा दानक गणनो शिष्टाचार मध्य होइछ। वेदक सार सत्य, सत्यक सार इन्द्रिय-दमन, तथा दमनक सार त्याग थिक। ई तीनू शिष्टाचार मे अछि। जे भ्रमवश धर्म कें ईर्ष्याक दृष्टि सँ देखैछ ओहि कुमार्गीक परिवारो विपत्ति मे पड़ैछ किन्तु जे शिष्ट, संयमी, वेदपाठी, त्यागी, धर्मक मार्गपर चलनिहार, सत्य धर्म मे अनुरक्त तथा गुरु सँ धर्मोपदेशित लोकस्थिति सँ धर्म-अर्थ कें निर्णय केनहार छथि ओहि सदाचारी धर्मात्मा कें अपन बुद्धिक नियामक बुझबाक चाही।

हे कौशिक ! ई शरीर एक सरिता थिक। एहि मे काम, क्रोध, लोभ आदि मगरक निवास अछि। जलक स्थान पर एहि मे नेत्रादि पञ्च इन्द्रिय अछि। पुनर्जन्म एकर दुर्गम स्थान थिक। धैर्यक नाव सँ एहि सरिता कें पार कएल जाइछ। अहिंसा परम धर्म थिक। एकर स्थिति सत्य मे रहैछ। सभ प्रवृत्ति सत्यक आश्रय मे अपन निर्धारित कार्य कें करैछ। सज्जनक आचारहि धर्म तथा आचारहि हुनक लक्षण थिक।

हे भगवन ! जकर जेहेन स्वभाव होइछ ओ ओही अनुसार चलैत अछि। शिष्टक कहब थिक जे न्यायसंगत कार्य धर्म तथा आचारक प्रतिकूल कार्य अधर्म थिक। जे शिष्टाचार कें मानैछ ओ क्रोध एवं इर्ष्या सँ रहित, अहंकार एवं मत्सर सँ शून्य, सरल, शान्त, वेदविहित, यज्ञ आदि कर्म कें केनिहार, पवित्र हृदय, सच्चरित्र, उदार, जितेन्द्रिय तथा गुरु सेवा मे तत्पर रहैछ। ओकर हृदय दुर्बल नहि होइछ। ओकर आचार एवं कर्म दोसराक हेतु दुष्कर होइछ तथा निजकृत कर्म सँ ओ सर्वदा सत्कार प्राप्त करैछ। ओकर हिंसा आदि कर्मक दोष स्वतः नष्ट भए जाइछ। ज्ञानी न्यायानुसार धर्मक आचरण कए स्वर्गारोहन करैछ। आस्तिक, अहंकार रहित, ब्राह्मणक आदर केनहार, शास्त्रक ज्ञाता एवं सच्चरित्रे कें स्वर्ग मे स्थान प्राप्त होइछ। वेदोक्त, शास्त्रोक्त एवं शिष्ट जन द्वारा आचारित ई तीनू धर्मक लक्षण थिक। सभ विद्याक अध्ययन, सभ तीर्थ मे स्नान, क्षमा, सत्य, सरलता एवं शौच शिष्टाचारक लक्षण थिक। जे अहिंसा परायण भए प्राणीमात्र पर दया रखैछ, ककरहु कठोर बचन नहि कहैछ, ब्राह्मणक प्रिय कार्य करैछ, शुभाशुभ कर्मक फल-सञ्चय सँ सम्बन्ध रखनिहार परिणाम कें विशेष रूप सँ जानैछ न्यायपरायण, सभहक शुभेच्छुक, सत्वगुणयुक्त, सत्यपथगामी, दीनपालक, तपस्वी तथा श्रेष्ठ विद्याधन कें छोड़ि अन्य धन कें तिरस्कार करैछ ओकरहि शिष्ट व्यक्ति कहल जाइछ।

दान देब, सत्य भाषण तथा विद्वेष सँ हीन आचरण ई तीनू सज्जनक साधारण लक्षण थिक। इर्ष्याक परित्याग, क्षमा, शान्ति, सन्तोष, प्रियवचन, काम एवं क्रोधक त्याग, शास्त्रानुकूल कर्म तपस्वीक स्वाभाविक गुण थिक। शिष्ट जन नित्य धर्मक आचरण करैत शिष्टाचारक श्रेष्ठ मार्गक अनुसरण करैत, प्रज्ञा सँ लोकाचारक समीक्षा करैत पाप-पुण्यक निर्णय करैछ तथा अन्त मे संसार-भव सँ मुक्ति प्राप्त करैत अछि।

हिंसाक प्रसंग मे धर्मव्याधक उपदेश

हे द्विज श्रेष्ठ ! हमरा जे बुझल छल से अहाँक समक्ष शिष्टाचारक प्रसंग मे उल्लेख कएल तखन हमर माँस विक्रीक जे धंधा थिक से वस्तुतः बड़ निकृष्ट थिक किन्तु दैव तँ बड़ प्रबल छाथि। पूर्व जन्मोपार्जित कर्मक फल अवश्य भोगए पड़ैछ। हमहूँ पूर्वजन्मक कृत पापक फल तँ भोगि रहल छी किन्तु हमरालोकनि निमित्त-मात्र छी। विधाता जकर जखन मृत्यु लिखलथिन्ह तखनहि घातक ओकरा मारैछ तथा हम ओकर माँस कें बेचैत छी। हे ब्राह्मण ! श्रुति मे लिखल अछि जे अन्न,

लता, पशु, पक्षी एवं मृग ई सभ अन्न सन मनुष्यक आहार थिक। पुनि हमरा लोकनि जाहि पशु कें मारि ओकर माँस बेचैत छी ओकरो देवता, अतिथि, भृत्य तथा पितरक पूजा एवं भोजन निमित्त उपयोग कएला सँ धर्मक अंश उपलब्ध होइछ। श्रुति मे अग्नि कें माँसकाम अर्थात् माँसाहारी लिखल गेल अछि। ब्राह्मण यज्ञ मे जाहि पशुक बध करैत छथि ओ पशुओ मन्त्रबल सँ स्वर्गलोक मे जाइछ। हे विप्र ! जँ यज्ञ संपादक अग्निदेव माँसप्रिय नहि होइतथि तँ किओ व्यक्ति माँस नहि खाइत। जेना ऋतुकाल मे अपन स्त्रीक सेवन सँ ब्राह्मणक ब्रह्मचर्य खण्डित नहि होइछ तहिना यज्ञ मे वा अन्य समय देवता-पितर कें अर्पण कए शेष माँसक भक्षण पाप नहि थिक। पूर्वक कर्मक फल जानि एहि वृत्ति सँ अपन जीविका चलाए रहल छी। शास्त्रकारक मत थिक जे अपन धंधा कें छोड़ला सँ अधर्म तथा ओकर संपादन सँ पुण्य प्राप्त होइछ। अपन कुल कर्म कें जीव कथमपि नहि छोड़ि सकैछ। विधाता कर्म-निर्णय मे एहि तरहें अनेक विधि कें प्रतिपादन कएलैन्ह अछि। जकर कुल-कर्म क्रूर थिक ओकरा सोचबाक चाही जे कोना ओकर उपकार हो तथा कोना ओहि निन्दनीय कर्म सँ मुक्ति प्राप्त होएत। हे ब्राह्मण ! हम एहि क्रूर कर्म कें करितहुँ अभिमान एवं अतिवाद सँ बचि सर्वदा दान, सत्य बचन, गुरुजनक सेवा तथा धर्म मे निरत रहैत छी।

लोक खेती कें श्रेष्ठ कर्म बुझैत अछि किन्तु ओहि मे बड़ पैघ हिंसा होइछ। खेत जोतबा काल पृथ्वी मे रहनिहार असंख्य प्राणीक हत्या होइछ; धान आदि कें काटबा काल ओहि मध्य रहनिहार जीवक मृत्यु भए जाइछ। मनुष्य जँ चलैछ तँ पयरक नीचा दबि करोड़ो जीव विनष्ट भए जाइछ। अतएव हिंसा सँ के बाँचल अछि ? विशेष रूप सँ विचारला पर प्रतीत होइछ जे अहिंसा केनहार व्यक्ति जगत मध्य अत्यन्त दुर्लभ अछि। विशिष्ट कुलोत्पन्न व्यक्ति निम्न कर्महु कें कएला पर लज्जित नहि होइत छथि। हे द्विजश्रेष्ठ ! जगत मे अनेक विपरीत रीतिक समक्ष धर्म एवं अधर्मक प्रसंग मे बड़ झमेल अछि। एहि परिस्थिति मे हमर अपन मत थिक कि जे अपन कुलोचित कर्म कें संपादन मे दत्तचित्त रहैछ ओ वस्तुतः श्रेष्ठ यशक भागी बनैछ।"

धर्मक महात्म्यक वर्णन

धर्मव्याधक एवंक्रमक उत्तर कें सुनि हर्ष सँ उत्फुल्ल भए कौशिक पुनि निवेदन करैत बजलाह—"हे ज्ञानी ! अज्ञान कें हटला सँ ज्ञानक आभा उदित होइछ जकर समता ने तँ दिनमणिक आभा सँ होइछ आ ने चन्द्रक ज्योत्सना सँ।

परमेश्वरक ओ दिव्य रूप अविनाशी रूप थिक जाहि सँ सनातन ज्ञानक अवतरण होइछ। अहाँ ओहि रूप कें प्राप्त कएने छी। अतएव धर्मक महात्म्यक प्रसंग मे उपदेश दए हमरा कृतार्थ करू।"

कौशिकक एहि निवेदन पर धर्मव्याध कहए लगलाह—"हे कौशिक! धर्मक गति अत्यन्त सूक्ष्म तथा ओकर अनन्त शाखा अछि। प्राणसंकट एवं विवाहक समय झूठ बाजला सँ पाप नहि होइछ। एहि स्थान मे सत्य बाजले सँ झूठक पाप होइछ तथा झूठ बाजला सँ सत्यक पुण्य। तात्पर्य जे जाहि सँ सर्वसाधारणक कल्याण होइछ सएह सत्य थिक। अतएव धर्मक तेहेन सूक्ष्म गति अछि जे अधर्मो कतहु धर्म भए जाइछ।

हे ब्राह्मण! मनुष्य शुभ वा अशुभ जे कार्य करैछ ओकर फलाफल ओकरा अवश्य प्राप्त होइछ किन्तु मूढ़ अनिष्ट फल कें प्राप्ति सँ देवताक निन्दा करैछ। मूढ़, कपटी तथा चञ्चल व्यक्ति अपना कें दोष नहि दए कर्मफलक दोष देवता कें दैछ। जँ पुरुषक कर्मफल स्वाधीन होइत तँ लोक अपन पौरुषक प्रसादात् इच्छानुसार कर्म फल कें प्राप्त करैत। तदर्थ पूर्वकृत कर्मक अनुसार एहि जन्म मे संयमी, निपुण एवं बुद्धिमान पुरुषहुँ कें विपरीत फल प्राप्त होइछ। लोक पुत्र-कामना सँ देवताक आराधना करैछ किन्तु पुत्र कुलक कलंक बनि जाइछ। मनुष्यक शरीर मध्य जे रोग पाओल जाइछ ओकरहु कारण कर्मे थिक। नाना प्रकारक भोज्य सामग्री कें रहितहुँ पूर्व कर्मक कारणे लोक उपभोग नहि कए सकैछ। पराक्रम एवं ऐश्वर्य सम्पन्न रहितहुँ लोक क्लेश प्राप्त करैछ तथा नाना प्रकारक चिन्ता मे सतत् निमग्न रहैछ। जँ लोक स्वाधीन रहैत तँ दैवाधीन नहि भए किओ मृत्यु कें नहि प्राप्त करैत। सभ सतत् तरुणे रहि अपन अभिलाषा कें पूर्ण करैत।

एके नक्षत्र मे अनेक व्यक्ति जन्म ग्रहण करैछ, अपन इष्टसिद्धिक निमित्त एके मंगल कार्यक अनुष्ठान करैछ किन्तु कार्य सिद्धि मे बड़ अन्तर देखल जाइछ। कौखन बिना यत्नोक कार्य सम्पन्न भए जाइछ। हे द्विज! श्रुति मे कहल गेल अछि —जे प्राणीमात्रक शरीर अनित्य एवं जीव नित्य थिक। अतएव शरीरक बध कएलहुँ पर ओ नष्ट नहि होइछ तथा जीव कर्म-बन्धन मे आबद्ध भेला सन्ता कर्मफल भोगबाक हेतु अन्य शरीर मे प्रविष्ट होइछ!"

मृदु सिकता सँ पूर्ण गंभीर समुद्र सँ परिवेष्ठित विशाल पृथ्वी सन धर्मव्याधक हे कथन कें सुनि कौशिक नितान्त हर्षित भए बजलाह—"हे धर्मज्ञ! जीव कोना स्य थिक? हमरा विस्तारपूर्वक कहू।"

कौशिकक एहि आग्रह कें सुनि व्याध नितान्त विनम्र भए पुनि कहब प्रारम्भ कएल—"हे ब्राह्मण ! लोक जे बुझैछ जे शरीरक विनाश सँ जीवक नाश भए जाइछ से मिथ्या थिक। जीव एक शरीर कें छोड़ि दोसर मे प्रविष्ट होइछ। मनुष्य अपन कृतकर्मक फल कें भोगैत अछि। अतएव एक देह सँ जे किछु शुभ वा अशुभ कर्म मनुष्य करैछ ओकर फलाफल ओ दोसर शरीर मे भोगैछ। जीव अपन कर्मानुसार पुनर्जन्मग्रहण करैछ। जे पुण्य-कर्म कें करैछ ओ श्रेष्ठ एवं यशस्वी तथा जे पापकर्म कें करैछ ओ नीच एवं नराधम होइछ।"

धर्मव्याधक एहि उक्ति कें सुनि कौशिक निस्सीम गर्वक अनुभव करैत आन्तरिक आनन्दोल्लास मे प्रवाहित होइत पुनि निवेदन करैत बजलाह—"हे धर्मज्ञ ! जीव पुण्य योनि एवं पाप योनि मे कोना जाइछ तथा ऊँच एवं निम्न जाति मे कोना अवतीर्ण होइछ ? एहि प्रसंगक हमर उत्कण्ठा कें अहाँ निवृत्त करू।"

कौशिकक निवेदन कें सुनि व्याध एवंक्रमें कहब प्रारम्भ कएल—"हे तपस्वी ! संस्काररूपी पूर्वजन्मक कर्मफले पुनर्जन्मक कारण स्वरूप थिक। जीव ओहि कर्मबीजक संग पुनर्जन्म ग्रहण करैछ। शुभकर्मक प्रसादात देवयोनि तथा शुभ एवं अशुभ दुहु कर्मक फल सँ मानव योनिक प्राप्ति होइछ। मात्र तमोगुण कर्म कएला सँ पशुपक्षी आदिक निकृष्ट योनि प्राप्त होइछ। घोर पापक फल सँ कीड़ा आदिक नारकीय योनि उपलब्ध होइछ। मनुष्य अपनकृत कर्मक प्रसादात जन्म, मृत्यु, जरा आदिक संताप सँ संतापित भए बारम्बार एहि संसार मे जन्म ग्रहण करैत अछि। एक देह कें छोड़ला पर जीव अपन कर्मफल सँ विविध योनि मे जन्म लए अनेक प्रकारक यातना कें सहैछ। हे ब्राह्मण ! मनुष्य जँ विषय-वासना कें छोड़ि सत्कर्मक पवित्रता कें प्राप्त कए तप एवं योग-साधना करैछ तँ ओहि शुभकर्मक फल सँ पवित्र लोक मे जाइछ जतए शोक एवं संताप नहि रहैछ। जे ईर्ष्या कें छोड़ि शुभकर्म कें करैछ तथा उपकारक निमित्त क्लाश रहैछ ओ व्यक्ति धर्म, अर्थ, स्वर्ग तथा सुख प्राप्त करैछ।

मनुष्य कें चाही जे साधु-सन्तक सत्कार, धर्मक आचरण, शिष्ट व्यक्तिसँ व्यवहार करथि। अपन धर्मक अनुसार कार्य कएला सँ लोकमध्य वर्णसंकर नहि होइछ। प्राज्ञ-पुरुष धर्महि मे रमैछ तथा धर्महि हुनक वृत्ति होइछ। ओ कखन राग ओ द्वेष आदिक वशीभूत नहि भए वैराग्यक आश्रय लैछ। ज्ञानेटा एहे साधन अछि जाहि सँ जीव कें मुक्ति प्राप्त होइछ जकर मूल शम एवं दम थिक। इन्द्रिय निग्रह, सत्य तथा दम सँ परम पदक प्राप्ति होइछ।"

धर्मव्याधक एहि वार्त्ता कें सुनि कौशिकक प्रसंख्यातक[1]द्वारा घर के काटला सँ कर्माशय रूपी वृक्षक फल[2] एवं सुख-दुख रूपी स्वादक विनाश भए गेल तथा हुनक चंचल चित्त-वृत्ति स्वतः हुनकहि मे समाश्रित भए गेल। ओ नितान्त गंभीर भए बजलाह—"हे विवेकी ! कर्माशय कें जन्म देनिहार शरीर एवं इन्द्रियेटा नहि भए मनोवृत्ति सेहो थिक जकर प्रेरणा सँ इन्द्रिय क्रियाशील होइछ तथा मनुष्य परिणाम,[3] संस्कार,[4] ताप[5] एवं गुण वृत्ति विरोध[6] एहि चारि दुख सँ पीड़ित होइछ। हे धर्मात्मा ! इन्द्रिय जे एतेक दुखदायी थिक ओ की थिक, ओकर निग्रह कोना कएल जाइछ तथा ओहि सँ कोन लाभ भए सकैछ ? से सभ विस्तारपूर्वक हमरा कहू।"

कौशिकक उत्सुकता कें बुझि व्याध नवजात शिशु सन स्वाभाविक आनन्दक उद्रेक सँ बजलाह—'हे विप्र ! मानव मोन सर्वप्रथम रूप, रस आदिक ज्ञान प्राप्तिक यत्न करैछ। ज्ञान प्राप्तिक उपरान्त ओ काम-क्रोधक वशीभूत होइछ। तदुपरान्त ओहि विषय कें ग्रहणार्थ ओ पैघ सँ पैघ कार्यक अनुष्ठान करैछ तथा अपन इष्ट रूप, गन्ध आदि विषयक लगातार सेवन करैछ। एवंक्रमें राग, द्वेष, लोभ एवं मोहक उत्पत्ति होइछ। एहि तरहें लोभ सँ अभिभूत तथा राग-द्वेष सँ प्रभावित भेला सँ मनुष्यक धर्मबुद्धिक अन्त भए जाइछ तथा ओ पाखण्डक आचरण करैछ।

कपट व्यवहारक द्वारा धनक प्राप्ति भेला सँ मनुष्यक बुद्धि ओहि मे निमग्न भए जाइछ तथा ओकर पाप-प्रवृत्ति प्रबल भए जाइछ। तदुपरान्त राग-द्वेष सँ तीन प्रकारक अधर्मक उत्पत्ति होइछ। एहि अनन्तर मोन सँ ओ पापक विचार, वाणी सँ पापक भाषण, तथा शरीर सँ पाप कर्म करैछ। एहि तरहक आचरणे सँ लोक पापी भए जाइछ तथा जे व्यक्ति सुख एवं दुख कें यथार्थ निर्णय मे निपुण भए अपन प्रज्ञा बुद्धिक प्रभाव सँ उपरोक्त दोष सँ पृथक् भए सज्जनक संगति करैछ हुनकहि बुद्धि सत्कर्मक सम्पादन सँ धर्म मे संलग्न रहैछ।"

---

१. विवेक ख्याति।
२. जाति, आयु, भोग।
३. भोगेन्द्रियक तृप्ति मे शान्तिक अनुभवक सुख।
४. विषय सुख कें उपलब्धि सँ रागक उत्पत्ति सँ क्लेश।
५. राग, द्वेषक वशीभूत भए मनुष्यक शुभा-शुभ कर्मक फलाफल।
६. गुणक कार्यक नाम गुण वृत्ति थिक। सतोगुणक कार्य प्रकाश सुखदायी, तमोगुणक कार्य अज्ञान-दुखदायी तथा रजोगुण मोह कर्त्ता थिक।

धर्मव्याधक उपरोक्त वचन के सुनि कौशिक सत, रज, एवं तम एहि तीन गुण सँ निर्लिप्त ज्ञानस्वरूप, सर्वथा शुद्ध, निर्विकार, कूटस्थ, असंग सन होइत बजलाह—"हे व्याध ! स्तुति, निन्दा, परकृति एवं पुराकल्प सँ रहित सत्य धर्मक वक्ता जगत मध्य पाएब नितान्त दुर्लभ अछि। अहाँ तँ ओहि धर्मक वर्णन कए रहल छी। तदर्थ हमरा अहाँ दिव्य गुण सम्पन्न कोनो महर्षि प्रतीत होइत छी।"

कौशिकक एवंक्रमक वचन कें सुनि व्याध पुनि कहए लगलाह—"हे ब्राह्मण ! एहि लोक मे ब्राह्मणे महाभाग्यवान् एवं अग्रभोगी पितर थिकाह। अहाँ ब्राह्मण कें प्रणाम कए हमरा सँ ओहि ब्रह्मविद्या के श्रवण करू।" तदुपरान्त ओ पुनि कहब प्रारम्भ कएलैन्ह—"हे कौशिक ! ई विश्व एवं सभ चराचर जगत पञ्चमहाभूतमय थिक। कोनहुटा पदार्थ एहि सँ रहित नहि अछि। आकाश, पवन, अग्नि, जल एवं पृथ्वी पञ्चमहाभूत थिक। शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध ई पाँचो ओकर गुण थिक। अहू सभहक पृथक्-पृथक् गुण एवं परस्पर गुणक वृत्ति अछि। पूर्वा-पूर्व गुण-परम्परा क्रमानुसार ईश्वर, विराट तथा हिरण्यगर्भ एहि तीन गुणधारी मे संक्रामित होइछ। एहि मे छठम गुण जे चेतना थिक ओकरा मोन, सातम गुण कें बुद्धि तथा आठम गुण कें अहङ्कार कहल जाइछ। ई एवं पाँच इन्द्रिय, आत्मा, सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण, एहि सत्रहक समूह कें अव्यक्त अर्थात् माय कहल जाइछ। ई सत्रहो तथा इन्द्रिय सँ ग्रहण केनिहार शब्द आदि पाँचो विषय भोग्य एवं भोक्ता सभ चौबीस गुण अछि। एहि मे किछु तँ इन्द्रिय ग्राह्य भेल सँ प्रकट तथा किछु इन्द्रियक पहुँचक बाहर भेला सँ अप्रकट अछि। हे ब्राह्मण ! हम अहाँ सँ ई तँ कहल आब कहू अहाँ कें आर की बुझबाक अछि !"

पञ्चमहाभूतक गुणक वर्णन

धर्मव्याधक एहि उक्ति कें सुनि कौशिक जाल सँ मुक्त भेल स्वच्छन्द पक्षी सन अज्ञान रूपी मोहक जाल सँ छूटि धन्यता कें अनुभव करैत बजलाह—"हे धार्मिक श्रेष्ठ ! जे पाँच महाभूत कहल जाइछ ओकर प्रत्येकक गुण कहबाक कष्ट कएल जाए।"

कौशिकक एहि उत्कण्ठा कें जानि व्याध एवंक्रमें बजलाह—"हे कौशिक ! पृथ्वी, जल, तेज, आकाश, एवं वायु आदि तत्त्व उत्तरोत्तर महागुण युक्त अछि। पृथ्वी मे पाँच गुण, जल मे चारि, तेज मे तीन, वायु मे दू तथा आकाश मे एक

गुण अछि। पृथ्वी मे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध पाँच गुण अछि। जल मे शब्द, स्पर्श, रूप और रस चारि गुण अछि। तेज मे शब्द स्पर्श, एवं रूप तीन गुण अछि। वायु मे शब्द एवं स्पर्श दू गुण अछि तथा आकाश मे केवल शब्द गुण पाओल जाइछ। पञ्चमहाभूतक ई पन्द्रह गुण सभ भूत मध्य वर्त्तमान रहैछ आहि मे सभ लोक सन्निहित रहैछ। ई सभ परस्पर अविच्छिन्न अछि। ई जँ परस्पर विषम भाव केँ प्राप्त होइछ तँ काल प्रेरित जीव एक शरीर केँ छोड़ि अन्य शरीर केँ प्राप्त करैछ। ई गुण आहि क्रम सँ उत्पन्न होइछ तकरहि विपरीत क्रम सँ नष्ट होइछ। ई चराचर जगत आहि पदार्थ सं आवृत अछि ओहि सभ मे पाञ्चभौतिक धातुए परिलक्षित होइछ। हे द्विज! इन्द्रिय जकरा ग्रहण कए सकैछ ओ व्यक्त तथा जे अनुमान एवं इन्द्रिय सँ बाहर अछि ओ अव्यक्त थिक। देहधारी व्यक्ति जँ इन्द्रिय केँ विषय सँ अवरोध कए आत्मतत्वक अनुसंधान करैछ तँ ओ सभ मे व्याप्त तथा अपनहि मे सभ केँ स्थित देखैछ। परावरज्ञ जीव प्रारब्ध कर्म सँ आबद्ध रहनहु जीवन भरि आत्माक सोपाधि अवस्थैक अनुभव करैछ तथा उपाधिशून्य भेला पर सभ अवस्था मे प्राणी मात्र मध्य सर्वदा अपना केँ व्याप्त देखनिहार पुरुष ब्रह्म-स्वरूप प्राप्त कए कथमपि अनिष्टक संयोग सँ क्लेशक प्राप्ति नहि करैछ। बुद्धि मार्ग प्रकाशक आत्मज्ञानक प्रभावेँ ओहि क्लेश केँ जे पूर्वोक्त भावा सँ उत्पन्न होइछ, मेटौलाक उपरान्त मुक्ति प्राप्त करैछ। विशुद्ध-बुद्धि युक्त भेला पर जे पुरुष मुक्ति प्राप्त करैछ सएह आत्मयोनि कहबैछ। ओ पुनि आदि-अन्त सँ हीन, निराकार, सुख-दुख आदि विकार सँ रहित अनुपम अद्वितीय भए जाइछ।

हे द्विज श्रेष्ठ! अहाँ जे किछु हमरा सँ पुछैत छी ओकर मूल तप वा आत्म तत्वक आलोचना थिक जे इन्द्रिय-निग्रहक बिना कथमपि नहि भए सकैछ। इन्द्रिए निमित्त मनुष्य स्वर्गक एवं नरकक अधिकारी होइछ। इन्द्रिय-दमने आत्मज्ञान एवं स्वर्गक साधन थिक। तदर्थ सएह यथार्थ योगविधि थिक। पाँच इन्द्रिय तथा छठम मोन पर प्रभुत्व स्थापित कए जे आत्म तत्वक विचार मे निमग्न होइछ ओ जितेन्द्रिय पुरुष समग्र पापक अनर्थ सँ पृथक रहैछ। पुरुषक शरीर रथ, इन्द्रिय ओहि मे जोतल अश्व तथा मोन वा आत्मा ओहि रथक सारथी थिक। धीर एवं निपुण पुरुषे इन्द्रिय रूपी अश्व केँ वश मे राखि रथी सन सावधान भए परम सुख सँ संसार मध्य विचरण करैछ। धैर्य इन्द्रिय निग्रहक प्रधान साधन थिक। जे व्यक्ति तत्वज्ञानक प्रभाव सँ—यथार्थ दृष्टिक शक्ति सँ विषय-सुख केँ अत्यन्त तुच्छ बुझैछ सएह तत्वज्ञानक फल प्राप्त करैछ।"

मायाक तीन गुणक वर्णन

एवंक्रमेँ धर्मव्याधक सूक्ष्म विषयक वर्णन केँ सुनि कौशिक पुनि बजलाह—"हे धार्मिक श्रेष्ठ ! चित्त वृत्ति, चेष्टाक बाहमुखी भेला सँ सांसारिक विषय सँ अवरोध कए अन्तर्मुखी बनाएब तथा अध्यात्म विषय मे संलग्न होयब निरोध थिक जे मायाक तीनू गुणक विनाशक बिना नहि भए सकैछ। अतएव सत्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुणक तत्वो केँ अहाँ हमरा सँ कहू।"

कौशिकक एहि आग्रह केँ सुनि व्याध एहि तरहेँ बजलाह— 'हे भगवन ! तमोगुणक स्वरूप मोह, रजोगुणक प्रवृत्ति तथा सत्वगुणक रूप प्रकाश (ज्ञान) थिक। जे व्यक्ति इन्द्रियासक्त, आलसी, अधिक काल धरि सुतएबाला, क्रोध, मोह, अविद्या तथा अज्ञान सँ परिपूर्ण छथि ओ तमोगुणी; जनिक विषय-वासना तथा मन्त्रणाशक्ति अत्यन्त प्रबल छैन्ह, ईर्ष्या रहित, मानी, चरित्रवान, मृदुभाषी तथा जे अपना केँ श्रेष्ठ बुझैत छथि ओ रजोगुणी तथा व्यक्ति अधिक काल धरि जगैत छथि, धीर, जितेन्द्रिय, बुद्धिमान, सर्वत्र प्रसिद्ध, ईर्ष्या एवं क्रोध सँ रहित तथा विषय वासनाक आधिक्यता सँ रहित व्यक्ति छथि ओ सत्वगुणी पुरुष थिकाह।

सत्वगुणी पुरुष ज्ञानोपार्जनक पश्चात लोक-व्यवहार मे लिप्त नहि भए तमोगुण एवं रजोगुण सम्बन्धी लोक व्यवहार केँ तिरस्कार करैछ तथा सर्वत्र संयमक उपयोग करैछ। मान-अपमानक ज्ञान आदि सभ द्वन्द्व भाव शान्त भए जाइछ तथा संशय बुद्धि निवृत्त भए जाइछ। शूद्रो एहि सद्गुण सँ युक्त भेला पर वैश्य एवं क्षत्रियक भाव केँ प्राप्त करैछ तथा सरलताक मात्राक आधिक्य भेला पर सत्वगुणी स्वभावक शूद्र ब्रह्मज्ञानक अधिकारी भए जाइछ। हे कौशिक ! अहाँ जे पूछल तकर वर्णन तँ हम कएल तखन आर अहाँ की पुछैत छी से कहू ?"

धर्मव्याधक एहि उक्ति केँ सुनला सँ कौशिकक अन्तःकरण मे रजोगुण एवं तमोगुण विनिष्ट भए गेल तथा सत्वगुणक उदय सँ ओ अग्नि मे तपाओल कुन्दन सन प्रदीप्त होइत बजलाह—"इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुख सँ ओहि आत्माक भान होइछ जे शरीर केँ अधिष्ठाताक रूप मे ओकरा तँ चलबैत अछि किन्तु हे विज्ञ ! मनुष्य अपन शरीर मध्य अग्नि पार्थिव धातु केँ प्राप्त कए कोना देहाभिमानी भए जाइछ तथा प्राण आदि वायु कोन स्थान विशेष मे सन्निहित रहैछ से कहबाक कष्ट करू।"

कौशिकक एहि उत्सुकता पर व्याध अत्यन्त प्रसन्न भए बजलाह— "हे कौशिक ! आगि शिरोभाग मे रहि समग्र शरीरक पालन करैछ, अर्थात नित्य

प्रकाशमान विज्ञानमय आत्मा चैतन्यमय आत्माक आश्रय लए शरीर मे चेतनाक संचार करैछ। प्राण ओहि चिदात्मा तथा विज्ञानात्मा मे वर्त्तमान रहि विविध प्रकारक चेष्टा करैछ। भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान सभ ओहि प्राण मे स्थित रहैछ। विद्वान सभ तत्व मे श्रेष्ठ ओहि ब्रह्मज्योति रूप प्राणक उपासना करैत छथि। चैतन्य एवं ज्ञान सँ युक्त प्राण प्राणीमात्र केँ सचेतन बनबैछ तथा जीवात्मा जे सनातन पुरुष थिकाह सएह मोन, बुद्धि, अहङ्कार, पञ्चभूतक शब्दादि विषय, प्रकृति एवं पुरुष थिकाह। जीवात्मा प्राण-वायुक प्रभाव सँ भीतर तथा बाहर सर्वत्र अपन शक्ति प्रसारित करैछ; समान-वायुक रूप मे भिन्न-भिन्न गति केँ ग्रहण करैछ तथा अपान नाम धारण कए जठरानलक आश्रय सँ वस्तिमूल एवं मलाशय मे मूत्र तथा मल केँ पहुँचबैछ। प्राण-वायु जँ प्रयत्न,[1] कर्म,[2] तथा बल[3] एहि तीन विषय मे प्रवृत्त होइछ तँ उदान नाम धारण कए मनुष्य शरीरक प्रत्येक सन्धिस्थल मे व्याप्त रहि 'व्यान' नाम ग्रहण करैछ। एवंक्रमेँ एकहि प्राण स्थानविशेषक अनुसार पाँच नाम सँ प्रसिद्ध होइछ।

जठरानल त्वचा आदि सभ धातु मे व्याप्त रहैछ। ओ प्राण आदि वायु सँ सञ्चालित भए अन्नादि रस, त्वचादि धातु तथा पित्तादि दोष केँ परिवर्त्तित करैत सम्पूर्ण शरीर मध्य परिभ्रमण करैछ। प्राण आदि वायु केँ एक स्थान पर संयोग भेला सँ सङ्घर्षण उत्पन्न होइछ। ओहि सँ प्रकट भेल उत्ताप केँ जठरानल कहल जाइछ जे अग्निरूप खाएल पदार्थ केँ पचबैछ। समान एवं उदान वायुक मध्य प्राण एवं अपान वायुक स्थिति रहैछ। एहि वायुक पारस्परिक सङ्घर्षण सँ उत्पन्न जठरानल शरीर केँ पुष्ट करैछ। पायु[4] भरि अग्निक स्थान केँ अपान कहल जाइछ। अपाने सँ शरीरधारीक प्राण आदि वायुक प्रवाह प्रकट होइछ। प्राण अग्निक वेग केँ लए मलद्वारक ऊपरक भाग पर टकराय पुनि ऊपर भए जाइछ तथा एवंक्रमेँ अग्नि केँ उभारैछ। नाभिक नीचाँ पक्वाशय[5] तथा ऊपर आमाशय[6] अछि। शरीरमध्य स्थित सभ प्राण वायुक स्थान नाभि थिक। नाड़ीगण हृदय सँ नीचाँ, ऊपर तथा यत्र-तत्र प्रसारित अछि। ई दसो प्रकारक प्राण-वायुक

१ कार्य करबाक चेष्टा।
२ चलब-फिरब।
३ बोझ उठेबाक शक्ति।
४ मलद्वार।
५ पचल भोजनक स्थान।
६ अपच भोजनक स्थान।

प्रभाव सँ शरीरक सभ भाग मे अन्न रस कें पहुँचबैछ। धीर एवं क्लान्तिरहित समदर्शी योगी एहि मार्ग सँ ब्रह्मक साक्षात्कार तथा आत्मा कें सहस्रार चक्र मे धारण करैत छथि। हे द्विज! एहि प्रकारेँ प्राण-वायु तथा अपान वायु सभ शरीरधारीक शरीर मध्य व्याप्त अछि।

आत्मा कें स्थूल एवं सूक्ष्म दुइ शरीर अछि। एक शरीर प्राण आदि एगारह विकार सँ युक्त अछि तथा दोसर शरीर महाभूत आदि सोलह कला सँ निर्मित अछि। आत्मा नित्य भेलहुँ कर्मक अधीन अछि। धारीक आगिसन आत्मा ओहि दुइ शरीरमध्य स्थित रहैछ। योगबल सँ ओकर उपलब्धि होइछ। हे ब्राह्मण! कमल पत्र पर जलबिन्दु सन जे परमात्मा सोलह कला सँ युक्त अन्तःकरण मे विराजमान रहैत छथि से क्षेत्रज्ञ, नित्य एवं योगाभ्यास सँ प्राप्त होइत छथि। जीव जेना सत्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुणक मूल थिक तथा आत्माक अधीन रहैछ तहिना परमात्मा आत्माक आश्रय मे रहैत छथि। शरीरादि अचेतन पदार्थ जीवक उपभोगक स्थान थिक। आत्मा जीवरूप सँ स्वयं चेष्टा करैछ तथा ईश्वर रूप सँ सभ जीवमात्रक चेष्टाक नियामक थिक। आत्मे सँ जीव एवं सात भुवनक प्रवृत्ति[1] होइछ। प्राणी मात्रक आत्मा, अर्थात परमात्मा प्राणीमात्र मे गूढ़रूप सँ स्थित भेला सन्ता यद्यपि प्रकाशमान नहि अछि तथापि विज्ञजन अपन सूक्ष्म विचार सँ आत्मा कें देखैत छथि। जकर आत्मा पवित्र रहैछ ओ चित्तशुद्धिक बल सँ सभ शुभाशुभ कर्म कें नष्ट कए आत्म निष्ठाक प्रभाव सँ अन्त समय मे अनायासहि मोक्ष कें प्राप्त करैछ। जेना तृप्त मनुष्य निश्चिन्त भए सुखपूर्वक सुतैछ तथा वायु रहित स्थान मे दीपक ज्योति प्रबलरूप सँ प्रकाशमान होइछ तहिना चित्तशुद्धि सँ सम्पन्न व्यक्ति प्रसन्न रहैछ। जकर चित्त विशुद्ध रहैछ तथा जे स्वल्प आहार करैछ ओ व्यक्ति अपन मोन कें आत्म चिन्तन मे प्रवृत्त कए स्वतः अपनहि हृदय मे आत्माक साक्षात्कार करैछ। प्रदीप्त दीप सन मोनक दीप सँ निर्गुण आत्माक दर्शन पावि मनुष्यक मुक्त होयबे तँ जीवनमुक्ति थिक।

सभ उपाय सँ क्रोध एवं लोभ कें जीतब पवित्र तपस्या थिक जे संसार-सागर कें पार करबा मे सेतु सदृश मानल जाइछ। क्रोध सँ तप कें, ईर्ष्या सँ धर्म कें, मानापमानक स्मृति सँ ज्ञान कें तथा प्रमाद सँ आत्मा कें सतत् बचबाक चाही। अहिंसा परमधर्म, क्षमा परमबल, आत्मज्ञान परमज्ञान तथा सत्यहि परमपवित्र व्रत थिक। सत्य ओकरा कहल जाइछ जाहि सँ प्राणीमात्रक हित होइछ। ज्ञान एवं कल्याण प्राप्त करबाक सर्वोत्तम उपाय सत्ये थिक।

---

१ सृष्टि।

जे व्यक्ति फलक इच्छाक बन्धन सँ मुक्त भए निष्काम कर्म करैछ तथा सभ वासना कें छोड़ि दैछ सएह सन्यासी एवं बुद्धिमान थिक। वासनाक वियोगे कें योग एवं ब्रह्मयोग कहल जाइछ। हे कौशिक! एहि जीवन मे ककरहु संग शत्रुता तथा कोनहु प्राणीक हिंसा नहि कए सभहक संग मित्रताक भाव रखबाक चाही। सन्तोष, निष्काम भाव, अकिञ्चन भाव, धैर्य एवं आत्मज्ञान मे रुचि श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करबाक साधन थिक। दान नहि लए सच्चरित बनबाक चाही। वैराग्ये सँ एहि लोक एवं परलोक मे शोकहीन निश्चल पदक प्राप्ति होइछ। दुर्लभ मोक्ष-पदक अभिलाषी कें सतत् तपक अनुष्ठान मे निरत, दम-गुणावलम्बी, विशुद्ध हृदय ऋषि भए समग्र विषयक लिप्सा कें छोड़बाक चाही। जकर सन्निकट लौकिक गुण, गुण रूप सँ नहि प्रतीत होइछ, प्रतिपादक जीवात्मा, प्राप्तिक उपाय आत्मज्ञान तथा जे सङ्गरहित एवं अक्षय सुखक आधार थिक सएह तँ ब्रह्म थिकाह। जे व्यक्ति सुख एवं दुख दुहु कें त्यागैछ ओकरहि ब्रह्मक साक्षात्कार तथा मुक्तिक प्राप्ति होइछ। हे द्विज श्रेष्ठ! हम जे किछु जनैत छलौंह से अहाँ सँ कहल आब और की अहाँ कें सुनबाक इच्छा अछि से कहू?"

माता-पिताक सेवा तथा महात्म्यक वर्णन

धर्मव्याधक उपरोक्त कथन कें सुनि कौशिकक अन्तःकरण मे आत्मज्ञानक उदय भेला सँ ब्रह्मक साक्षात्कार मे लीन होइत ओ बजलाह—"हे निष्पाप! कोनो भ्रमर तँ गन्धमात्रक निमित्त उड़ैछ आ कोनो मधुक लिप्सा सँ। किन्तु जे मधु कें पीबि मस्त भए जाइछ ओ ने तँ पुनि उड़ैछ वा ने ओकरा और अधिक मधुपानक इच्छे शेष रहैछ। हे सौम्य! धर्मक प्रसंगक एहेन कोनोटा बात नहि अछि जे अहाँ कें नहि बुझल अछि।"

कौशिकक एवंक्रमक बचन कें सुनि धर्मव्याध बजलाह—"हे ब्राह्मण! जाहि धर्मक प्रभाव सँ हमरा ई सिद्धि प्राप्त भेल ओकर प्रत्यक्ष दर्शन कए लिए। यह मध्य आबि हमर माता-पिता कें देखू।"

व्याधक एहि तरहक आग्रह पर कौशिक व्याधक घर गेलाह। घर देव भवन सदृश मनोहर, स्वच्छ एवं सुसज्जित छल। समग्र भवन मधुर सुगन्ध सँ व्याप्त एवं स्वच्छ ज्योत्स्ना सँ मनोज्ञ प्रतीत होइत छल। व्याधक माता-पिता भोजनोपरान्त मनोहर आसन पर विराजमान छलाह। धर्मव्याध हुनका लोकनि कें देखितहि प्रणाम कएलथिन्ह तथा ओ लोकनि आशिर्वचन दैत बजलाह—"हे धर्मज्ञ! अहाँ क पैघ आयु हो। अहाँ इष्टगति, ज्ञान, तप एवं बुद्धि प्राप्त

कएने छी। हे पुत्र! अहाँ बड़ सपूत छी। अहाँ नित्य विधिपूर्वक श्रद्धाक संग हमरालोकनिक पूजा एवं सम्मान देवतो सँ बढ़ि कए करैत छी। अहाँक अन्तःकरण अत्यन्त पवित्र अछि। अहाँ ब्राह्मण सन जितेन्द्रिय छी। अहाँक पितामह एवं प्रपितामह अहाँ केँ एहि प्रकारे श्रद्धा सँ माता-पिताक पूजा केँ देखि अहाँ पर नितान्त प्रसन्न छथि। अहाँ मोन, वाणी, तथा काया सँ हमरालोकनिक सेवा करैत छी तथा अहाँक भक्तिभाव कथमपि कम नहि होइछ"।

एतंकमेँ अपन माता-पिताक कहलाक उपरान्त धर्मव्याध हुनका लोकनि केँ कौशिकक वृत्तान्त कहलथिन्ह। धर्मव्याधक द्वारा कौशिकक परिचय प्राप्त कए ओ लोकनि हुनकर सेवा सत्कार कएलथिन्ह। तदुपरान्त कौशिक अत्यन्त विनम्र भए हुनकालोकनि सँ पुछलथिन्ह—"हे सौम्य! अहाँ लोकनि कुशल तँ छी? अहाँ केँ वृद्धावस्थाक कोनो व्यथा तँ नहि अछि?"

कौशिकक एहि वचन केँ सुनि व्याधक माता-पिता प्रत्युत्तर दैत बजलाह—'हे ब्राह्मण! हमरालोकनि पूर्ण प्रसन्न छी। अहाँ तँ एतए निर्विघ्न अएलहुँ? मार्ग मे कोनो कष्ट तँ नहि भेल!"

हुनकालोकनिक सद्भावना सँ प्रेरित वचन केँ सुनि कौशिक बजलाह—"हम एतए नीक जकाँ अएलहुँ।"

तत्पश्चात कौशिक केँ देखि धर्मव्याध कहए लगलाह—'हे भगवन! ई माय-बाप हमर परम देवता थिकाह। देवताक निमित्त जे पूजा-आराधना विहित अछि से सभ हम हिनके लोकनि केँ करैत छी। लोक जेना इन्द्रादि तैंतीस प्रधान देवताक पूजा करैत छथि तहिना हम एहि माता-पिताक पूजा करैत छी। ब्राह्मण जेना विविध प्रकारक पूजोपचार सँ देवताक पूजा करैत छथि तहिना हम आलस्य केँ छोड़ि माता-पिताक पूजा करैत छी। हम हिनके यज्ञ एवं चारू वेद बुझैत छिऐन्ह। हमर पुत्र, भार्या, सुहृद् एवं प्राण धरि जे किछु हमरा अछि ओ सभ हिनकहि लोकनिक हेतु अछि। हम नित्य अपन स्त्री एवं पुत्रक संग हिनकालोकनिक सेवा करैत छी। हिनकर प्रिय कार्यक सम्पादन मे जँ अधमों होइछ तँ हमरा कोनो टा संकोच नहि होइत अछि। जे व्यक्ति अपन माता-पिताक सेवा करैछ ओकरा नित्य अग्निहोत्र करबाक फल प्राप्त होइछ। गृहस्थाश्रम मे रहनिहारक निमित्त इएह सनातन धर्म थिक।"

धर्मव्याधक पूर्व जन्मक वृतान्त

माता-पिताक माहात्म्यक वर्णनक उपरान्त धर्मव्याध पुनि कहब प्रारम्भ कएल—"हे भगवन! माता-पिताक सेवारूप हमर तपक प्रभाव तँ देखू।

ओ पतिव्रता अहाँ केँ एतए अएबाक प्रसंग मे कहल से सभ हमरा एहि तपक प्रसादात् प्राप्त भेल दिव्य दृष्टिक प्रभाव सँ अवगत भएगेल छल।"

धर्मव्याधक एहि कथा केँ सुनि कौशिक बजलाह—"हे धर्मात्मा !' मुक्त जीव सत्यकाम एवं सत्य-संकल्प होइछ। ओ पतिव्रता हमरा अहिना अहाँक परिचय देलैन्ह हम वस्तुत: तहिना अहाँ केँ प्रभावशाली एवं ज्ञानी पाओल।"

कौशिकक एहि कथा केँ सुनि व्याध बजलाह—"हे ऋषिश्रेष्ठ ! ओ पतिव्रता हमरा नीक जकाँ जनैत छथि तदर्थ ओ अहाँ केँ हमरा एतए पठौलैन्ह। आब हम अहाँक हितक कामना सँ जे किछु कहैत छी से सुनू।

हे ब्राह्मण ! अहाँ अपन माता-पिताक सेवा शुश्रूषा नहि कए हुनकर आज्ञाक बिना हुनकालोकनि केँ अनादर कए वेदक अध्ययनक निमित्त घर सँ निष्कमण कएल। अहाँक ई कार्य युक्ति संगत नहि भेल। अहाँक स्नेह सँ आतुर एवं चिन्ता सँ कातर भए ओ लोकनि आन्हर भए गेल छथि। अहाँ तपस्वी, धर्मनिष्ठ एवं महात्मा छी। अतएव अहाँ हुनकालोकनिक प्रसन्नताक हेतु घर आपस भए जाऊ अन्यथा अहाँक सभ उपार्जित पुण्यक विनाश भए जाइत।"

व्याधक उपरोक्त कथन केँ सुनि कौशिक बजलाह—"हे निष्पाप ! हम अहाँक एहि परामर्श केँ सुनि नितान्त प्रसन्न भेलहुँ तथा अहाँक सद्भावना सँ प्रेरित कथाक पालन सत्वर करब।"

कौशिकक एहि उक्ति केँ सुनि व्याध पुनि बजलाह—"हे विप्र ! अहाँ जाहि अनादि सनातन धर्मक अनुष्ठान कए रहल छी से साधारण आत्मज्ञानहीन व्यक्ति नहि कए सकैछ। अहाँ एहि धर्मक प्रभाव सँ देवतुल्य भए गेल छी। अतएव आब अहाँ केँ माता-पिताक समक्ष जाए हुनकर पूजा एवं सेवे करब उचित थिक।"

धर्मव्याधक एहि कथा केँ सुनि कौशिक एवंक्रमेँ कहए लगलाह—"हे पुरुष श्रेष्ठ ! भाग्यक प्रसादात् हम एतए धरि अएलहुँ। हे धर्मज्ञ ! हम अहाँक सत्यनिष्ठा केँ देखि अत्यन्त प्रसन्न भेलहुँ। अहाँ केँ भगवान नीक करथु। हम अहाँ केँ शूद्र नहि बुझैत छी किएक तँ शूद्र केँ सूक्ष्म सनातन धर्मक ज्ञान कथमपि नहि भए सकैछ। प्रतीत होइछ जे भवितव्यताक वश अहाँ शूद्र योनि मे उत्पन्न भेलहुँ। हमरा अत्यन्त उत्सुकता अछि जे अहाँ कोन कर्मक फल सँ एहि शूद्र-योनि केँ प्राप्त कएलहुँ अछि।"

कौशिकक एहि आग्रह कें मानि धर्मव्याध कहए लगलाह—"हे ब्राह्मण ! हम पूर्वजन्म मे ब्राह्मण छलहुँ। हमर जन्म एक श्रेष्ठ ब्राह्मण वंश मे भेल तथा वंश परम्परागत वेद, वेदाङ्ग, शास्त्र एवं पुराणक पूर्ण अध्ययन कएल। हमर विद्या, गुण एवं पराक्रम पर आकृष्ट भए नगरक धनुर्वेद मे निपुण राजा हमरा अपन मित्र बनौलैन्ह। राजाक सम्पर्क मे रहि हमहुँ बाणविद्या मे पारंगत भए गेलहुँ। एक समय मे ओ राजा अपन प्रधान-प्रधान योद्धा, मंत्री आदि के संग लए मृगयार्थ एक बन मे गेलाह। राजाक संग हमहुँ छलौंह। बन मे एक आश्रमक समीप हमरा लोकनि अनेक मृगक शिकार कएल। दैववशात् हमरा द्वारा प्रक्षिप्त बाण एक ऋषि कें आहत कएल। ऋषि तत्क्षण धाराशायी भए गेलाह। ओ व्यथा सँ आर्त्तनाद करैत बजलाह—'हम तँ ककरहु कोनो टा अपराध नहि कएल तखन ई पाप कर्म के कएलक !' "हे कौशिक ! हम तँ आनन्द मे उत्फुल्ल भए ओतए गेलहुँ जे एक मृग कें मारल अछि किन्तु ऋषि कें तड़पैत देखि असीम व्यथाक अनुभव कएल। दुख सँ विह्वल होइत हम स्वतः अपना कें धिक्कारैत समीप जाए हम ऋषिक अनुनय करैत कहल—हे भगवन ! बिना जानल हमरा सँ ई अपराध भेल। अपने क्षमा करू। किन्तु मुनि क्रोध सँ अधीर भए कहल—"रे क्रूर ! तू व्याध भए शूद्र योनि मे जन्म ग्रहण कर।" हे द्विज श्रेष्ठ ! ऋषिक एवं क्रमक शाप कें सुनि हम पुनि हुनक प्रार्थना करैत कहल—हे भगवन ! हम अज्ञानावस्था मे ई अनुचित कर्म कएल। तदर्थ हमरा अपने क्षमा करू। एहि तरहें ऋषिक अभ्यर्थना कएला पर ऋषि प्रसन्न भए बजलाह—'हमर शाप तँ मिथ्या नाहि भए सकैछ किन्तु अहाँ पर हम एतेक कृपा करैत छी जे अहाँ शूद्र योनि मे उत्पन्न भेलहुँ माता-पिताक सेवा करब तथा अहाँ कें धर्मक ज्ञान सतत् बनल रहत। माता-पिताक सेवाक प्रभाव सँ महासिद्धि पाबि अहाँ कें पूर्वजन्मक स्मृति रहत तथा अहाँ कें स्वर्ग प्राप्त होएत। हमर एहि शापक अन्त भेला पर पुनि अहाँ कें ब्राह्मणक योनि प्राप्त होएत।"

हे ब्राह्मण ! ओ उग्रतेजस्वी ऋषि शाप दए पुनि एहि तरहक कृपा कएलैन्ह। हम ऋषिक शरीर सँ बाण निकालि हुनका अपन आश्रम मे पहुँचाओल। भगवानक कृपा सँ ओ नीके भए गेलाह। [हे भगवन ! हम अपन पूर्व जन्मक घटना एवं एहि जन्मक नीच योनि मे उत्पन्न होएबाक कारण कें अहाँ कें सुनाओल।"

धर्म व्याधक एहि कथा कें सुनि कौशिक बजलाह—" हे सौम्य ! मनुष्येतर

योनि मे जीव अपन कर्म कें मात्र भोगैत अछि किन्तु ओ किछु ओ एहि योनि मे करैछ ओकर ओ जिम्मेवार नहि होइछ। अतएव अहाँ कें दुखी नहि हेबाक चाही। अहाँ लोकक चरित्रक तत्वक ज्ञाता रहितहुँ अपन जाति कें जानि मृगया कर्म कएल जे ब्राह्मणक हेतु सर्वदा अनुचित छल। ओहि कर्मक फल तें किछु दिन धरि अहाँ कें भोगए परत। तदुपरान्त अहाँ पुनि ब्राह्मण योनि मे जन्म ग्रहण करब। मुदा हम तें अहाँ कें अहू जन्म मे ब्राह्मणे बुझैत छी किएक तँ जे शूद्र इन्द्रिय दमन, सत्य एवं धर्म पर प्रीति रखैछ ओ ब्राह्मणे बुझल जाइछ। मनुष्य सच्चरित्रे सँ ब्राह्मण भए सकैछ। अतएव अहाँसन लोक-वृत्तान्तक ज्ञाता कें दुखानुभव नहि करबाक चाही।"

कौशिकक एहि उक्ति कें सुनि व्याध बजलाह—"हे विप्र! मोनक दुख के बुद्धि सँ तथा शरीरक दुख कें औषध आदि सँ निवृत्त करबाक चाही। संसारमध्य सुख एवं दुख सभ कें भोगैए पड़ैछ। अतएव ज्ञानी सुख एवं दुख दुहु कें छोड़ि सुखी होयबाक यत्न करैछ। जे व्यक्ति ज्ञान मार्ग कें प्राप्त कएल ओ शोकानुभव नहि करैछ किएक तँ ओ परमगति पर लक्ष्य कें रखैछ। कार्य कएला सँ फलक प्राप्ति तँ होइतहि छैक। उद्योग सँ उदासीन रहला सँ नीक होइछ। अतएव दुख अएला पर दुख सँ निवृत्तिक निमित्त यथोचित उद्योग करबाक चाही। तत्वज्ञानक पारदर्शी प्राणीमात्र कें विनाशशील होएबाक विचार कए कथमपि शोकक अनुभव नहि करैत छथि। हे ब्राह्मण! हमहुँ शोकानुभव नहि करैत छी। समयक प्रतीक्षा मे रहि एहि शरीर मध्य रमैत छी।"

व्याधक एहि कथन कें सुनि कौशिक अत्यन्त विह्वल भए बजलाह—"हे धर्मज्ञ! अहाँ ज्ञानी छी तथा अहाँक बुद्धि अथाह अछि। अहाँ सतत् पाप सँ पृथक रहैत छी। अतएव हम अहाँक एहि हीन योनिक निमित्त शोकानुभव नहि करैत छी। हे नरश्रेष्ठ! आब हमर एतए सँ प्रस्थान करबाक इच्छा अछि। अहाँक सतत् कल्याण हो तथा अहाँ सर्वदा धर्मक पालन कएल करी!"

एवंक्रमें कौशिकक कहला पर व्याध हाथ जोड़ि कौशिक कें विदाह कएल। व्याधक प्रदक्षिणा कए कौशिक अपन गृह कें प्रस्थान कएल। गृह आबि कौशिक तन, मोन, धन सँ अपन माता-पिताक सेवा शुश्रूषा करए लगलाह।





लेखक

लेखकक अन्य कृत ग्रंथ

१. महाकवि विद्यापति नाटक (मैथिली) मूल्य २) टाका
२. कन्दर्पीघाट नाटक (मैथिली) मूल्य १) टाका
३. शास्त्रार्थ नाटक (मैथिली) मूल्य १ टाका ५० पैसा
४. एकादशी (मैथिली) मूल्य १) टाका ५० पैसा
५. विद्याधर-कथा (मैथिली) मूल्य २) टाका
६. उर्वशी (मैथिली) मूल्य ३) टाका
७. कालचक्र की उत्पत्ति एवं उत्पन्न क्रमों की संक्षिप्त व्याख्या (हिन्दी) मूल्य ६) रुपये।

पुस्तक प्राप्ति स्थान